International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(3): 01-05

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(3): 01-05
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-03-2016
Accepted: 05-04-2016

डॉ0 राजकुमार
शोध–छात्र (डी0 लिट0)
संस्कृत विभाग, बी0 एस0 ए0 कॉलेज, मथुरा

डॉ0 नागेन्द्र नागर
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
बी0 एस0 ए0 कॉलेज, मथुरा

Correspondence
डॉ0 राजकुमार
शोध–छात्र (डी0 लिट0)
संस्कृत विभाग, बी0 एस0 ए0 कॉलेज, मथुरा

श्रीमद्भगवद्गीता में माया का स्वरूप

डॉ0 राजकुमार, डॉ0 नागेन्द्र नागर

माया शब्द मा (नहीं) तथा या (जो) इन दो अक्षरों के योग से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है. नहीं है जो अर्थात् माया । माया शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है परन्तु यहाँ पर यह इन्द्र की शक्ति का प्रतीक है–

रूपरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते मुक्ता ह्यस्य हरयः शतादशः।।[1]

उपनिषदों के अनुसार माया ईश्वर की शक्ति है, जिसके द्वारा जगत् की वास्तविक स्थिति और पुरुष (आत्मा अथवा बह्म) का यथार्थ स्वरूप आवृत है। प्रश्नोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्रह्मलोक में पहुँचने के लिये माया का परित्याग परमावश्यक है– तेषामसौ विरजोब्रह्मलोको न येशु जिह्नमनृतं न माया चेति।[2] भगवान श्रीकृष्णजी के अनुसार –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्तिते ।।[3]

अर्थात् यह अति अदभुत त्रिगुणमयी (सत्व, रज तथा तमोगुण से युक्त) मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस माया के संसाररूपी भवसागर से पार हो जाते हैं। ऐसा ही भगवान शिव ने कहा है–

अनिर्वाच्या महाविद्या त्रिगुणा परिणामिनी ।
रजः सत्त्वं तमश्चेति त्रिगुणाः परिकीर्तिताः।।[4]

अर्थात् यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् मेरी माया शक्ति का ही विस्तार है। यह माया शक्ति अनिर्वचनीय है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह तीन गुणों (सत्व, रज तथा तमोगुण से युक्त) वाली है। जिनके परस्पर संयोग से इस दृश्य जगत् की रचना होती है। न मैं ब्रह्म कर्त्ता हूँ, न यह मेरा कार्य है। मैं सदा इसमें निर्लिप्त अवस्था में रहता हूँ। श्वेताश्वत्तरोपनिषद् में माया के परित्याग का प्रमुख साधन ब्रह्मचिंतन को बताया गया है।[5] माया के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये तुलसीदास जी ने अपनी कृति श्री रामचरित्मानस में लिखा है–

अतिप्रचण्ड रघुपति कै माया।
जेहि न मोह को अस को जग जाया।।[6]

श्री रघुनाथ जी की माया बड़ी प्रबल है जगत् में ऐसा कोई नहीं जन्मा है जिसे इस ने मोहित न किया हो अर्थात् माया सृष्टि के प्रत्येक प्राणी में मोह को उत्पन्न करने वाली है। इसने ब्रह्मपुत्र नारदजी जैसे तत्त्वज्ञानियों को भी नहीं छोड़ा है। एक बार नारद जी ने हिमालय पर्वत की एक गुफा में तपस्या करके काम पर विजय प्राप्त कर ली और इस सम्पूर्ण वृतांत को भगवान शिव, अपने पिता ब्रह्मा जी और अन्त में भगवान विष्णु जी से कहा उस समय नारदजी के मन में अहंकार आ गया था और इसके पश्चात् वे वहाँ से चले गये तब भगवान विष्णु जी ने नारद जी के अहंकार नाशार्थ अपनी माया को प्रेरित किया। तब उस माया ने नारदजी के मार्ग में सौ योजन (चार सौ कोस) का नगर रचा–

विरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत् योजन विस्तार।
श्री निवासपुर पुर ते अधिक रचना विविध प्रकार।।

इस नगर की भाँति– भाँति की रचनायें लक्ष्मी निवास भगवान विष्णु के धाम वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर लगती थीं। उस नगर की शोभा को देखने के लिये नारदजी उसमें प्रवेश कर गये। उस माया रचित नगर का स्वामी राजा शीलनिधि था जिसकी विश्वमोहिनी स्वरूपवती कन्या का स्वयंवर हो रहा था। नारदजी उस कन्या को देखते ही मोहित हो गये, उसे प्राप्त करने हेतु भगवान विष्णु से उनका हरि रूप मांगा। भगवान विष्णु जी ने नारद जी के हितार्थ उन्हें हरि अर्थात् बानर का रूप प्रदान कर दिया और स्वयं उस स्वयंवर में सम्मिलित होकर विश्वमोहिनी से विवाह कर लिया। नारदजी ने भगवान विष्णु को बानर का स्वरूप प्रदान करने के कारण शाप दे दिया। यह सब माया का ही प्रभाव था।[7] माया के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये जगत्गुरू शंकराचार्य जी ने विवेकचूड़ामणि में कहा है–

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिनाद्यदिद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियै माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ।।[8]

अर्थात् –जो अव्यक्त नामवाली, त्रिगुणात्मिका, अनादि, अविद्या परमेश्वर की अपरा शक्ति है वही माया है। बुद्धिमान मनुष्य इसके कार्य से ही अनुमान करते हैं। यह न सत् है और न असत्, न अभयरूप है और न उभयरूप है, न अंगसहित है न अंगरहित है, न उभयात्मिका है; किन्तु अत्यन्त अलौकिक अदभुत और अनिर्वचनीयरूपा है–

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिकानो ।
सांगप्यनंगा ह्युभयात्मिका नो सहाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा ।।[9]

इस माया के त्रिगुणों (सात्विक, राजस और तामस) के भाव से यह समस्त संसार का प्राणी समुदाय मोहित हो रहा है, इसीलिये इन गुणों से परे मुझ (भगवान श्री कृष्ण) अविनाशी को नहीं जान पा रहा है।[10]
समस्त दर्शनों में माया को प्रकृति, अविद्या, अध्यास, अज्ञान आदि कहा गया है। इससे उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।[11]

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुख संगेन बध्नाति ज्ञान संगेन चानघ।।[12]

इन तीनों गुणों में सत्त्व गुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और विकार रहित है, वह सुख और ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है। यद्यपि सत्त्वगुण शुद्ध निर्मल है उसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं है। सत्त्वगुण वाला ही मुक्ति का अधिकारी है; किन्तु वह भी रज एवं तम के साथ मिलकर बन्धन का कारण बन जाता है। ये माया के तीनों गुण आत्मा के लिये आवरण स्वरूप हैं जिनमें से आत्माका प्रकाश प्रतिविम्बित होकर समस्त जड़ पदार्थों को प्रकाशित करता है। शरीर में जितने भौतिक पदार्थ हैं, जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है वे आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित हैं; किन्तु इन गुणों के कारण वह भिन्न प्रकार का दिखायी देता है।[13]

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा संगसमुदभवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्म संगेन देहिनम्।।[14]

अर्थात्–कामना और आसक्ति से उत्पन्न रागरूप रजोगुण इस जीवात्मा को उसके कर्मों और फल की आसक्ति के बन्धन से बाँधता है। रजोगुण की शक्ति क्रियारूप है, जिससे मनुष्य विभिन्न प्रकार के करने कर्म को उद्यत होता है यह अनादि शक्ति है इसीलिये मनुष्य अनादिकाल से निरन्तर कर्म में प्रवृत्त होता रहा है। इसके अभाव में वह आलसी एवं निकम्मा हो जाता है। इसी गुण के कारण मन में राग एवं दुःख भी पैदा होते हैं। मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, असूया, अभिमान, ईर्ष्या और मत्सर ये दोष माया की इस रजोगुणी प्रकृति के ही कारण हैं। इन्हीं के कारण मनुष्य कर्मों में प्रवृत्त होता है तथा वह इस रजोगुणी कर्मों में प्रवृत्त होने से ही बन्धनग्रस्त होता है–

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।[16]

समस्त देहाभिमानियों को मोहित करने वाला तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है। इसी प्रकार विवेक चूड़ामणि में भी कहा गया है–

अज्ञानमालस्यजडत्वनिद्राप्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः ।
एतैः प्रयुकतो नहिं वेत्ति किंचिन्निद्रालुवत्स्तम्भवदेवतिष्ठति ।।[17]

माया के तमोगुण के कारण व्यक्ति अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा, प्रमाद और मूढ़ता आदि गुण वाला हो जाता है। इनसे वह कुछ नहीं समझता है और निद्रालु या स्तम्भ के समान (जड़वत्) रहता है। उसकी बुद्धि भ्रमित रहती है तथा इसी कारण वह वस्तु के सत्य स्वरूप को न जानकर उसे वह अन्य प्रकार की प्रतीति होने लगती है। इसी भ्रम के कारण यह ब्रह्म के सत्य स्वरूप को न जानकर माया को ही सत्य मान लेता है; जिससे उसके जन्म – मरण रूपी चक्र का कभी अन्त नहीं होता। तमोगुण के कारण ही उसकी क्रिया रूप विक्षेप शक्ति का भी प्रसार हो जाता है; जिससे वह अनैतिक कर्म करने को भी उतारू हो जाता है। चाहे कोई व्यक्ति कितना ही विद्वान, चतुर एवं शास्त्रों का ज्ञाता क्यों न हो यदि उस पर माया की यह तमोगुणी आवरण शक्ति है तो वह कभी भी उसके सत्य स्वरूप को न समझकर उसके अन्य स्वरूप को सत्य मानने लग जाता है व किसी भी तर्क एवं प्रमाण से उसे उसका सत्य स्वरूप नहीं समझाया जा सकता। इसी तमोगुणी शक्ति के आवरण के कारण ही मनुष्य में ऐसी अभावना होती है कि 'ब्रह्म नहीं है'। साथ ही इसके विपरीत यह भावना भी होती है कि 'मैं शरीर हूँ'। किसी के होने में जो संदेह होता है उसे असंभावना कहते हैं तथा कोई वस्तु है या नहीं इस प्रकार का भाव उत्पन्न होना संशय है इसे विप्रतिपत्ति कहते हैं। ये सब तमोगुण के कारण होते हैं यहाँ तक कि समस्त सृष्टि का व्यवहार भी तमोगुण की शक्ति के कारण डांवाडोल रहता है।[18]

सत्त्वं सुखे सञ्यति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत्।।[19]

माया से उत्पन्न सत्त्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढ़ककर जीवात्मा को सदा प्रमाद में लगाता है।

सत्त्वं शुक्लं समादिष्टं सुखज्ञानास्पदं नृणाम्।
दुःखास्पदं रक्तवर्णं चंचलं च रजो मतम्।।
तमः कृष्णं जड़ं प्रोक्तमुदासीनं सुखादिषु।
अतो मम समायोगच्छक्तिः स्यास्तित्रगुणात्मिका।।[20]

अर्थात् सत्त्वगुण का वर्ण शुक्ल है। यही गुण मनुष्य को सुख शान्ति, आनन्द व ज्ञान को देने वालाहै। रजोगुण मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करता है। इस गुण की अधिकता होने पर व्यक्ति क्रियाशील व कर्मठ होता है। तम का कृष्ण वर्ण है। यह जड़ है और सुख–दुःख से उदासीन रहता है। इस गुण से युक्त मनुष्य न सुख

प्राप्ति की इच्छा करता है, न दःख निवृत्ति के उपाय खोजता है क्योंकि उसमें ज्ञान शक्ति, सोचने विचारने व चिंतन करने की शक्ति की कमी होती है। यह तीन गुणों वाली माया शक्ति उस एक चैतन्य शक्ति से ही क्रियाशील होकर कार्य करती है अन्यथा वह जड़ होने से कोई क्रिया स्वयं नहीं कर सकती है। प्रकृति अथवा माया के इन्हीं तीन गुणों पर प्रकाश डालते हुये सांख्यकारिकाकार ईश्वर कृष्ण ने कहा है–

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टकं चलं च रजः।
गुरू वर्णकमेव तमः प्रदीपवच्चर्थतो वृतिः।।[21]

अर्थात्–सत्त्वगुण लघु (हल्का) और प्रकाशक, रजोगुण उत्तेजक और चंचल तथा तमोगुण भारी (गुरू) और नियामक होता है। पुरुषार्थ रूप अर्थ के लिये इनकी क्रिया दीपक के समान होती है। रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सत्त्वगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर रजोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। जिस समय मानव शरीर के अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनता और विवेक शक्ति उत्पन्न होती है उस समय जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है। जिस समय इस शरीर में लोभ प्रवृत्ति स्वार्थबुद्धि से कर्मों का सकाम भाव से आरम्भ, अशान्ति और विषय भोगों की लालसा हो उस समय जानना चाहिये कि तमोगुण बढ़ा है। जिस समय अन्तःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश कर्तव्य कर्मों में अप्रवृत्ति और व्यर्थ चेष्टा तथा निद्रादि अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियां हो जायें उस समय जानना चाहिये कि तमोगुण बढ़ा है। सत्त्वगुण की अधिकता में मरने वाला मनुष्य उत्तम कर्म करने वालों के दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है। रजोगुण की अधिकता में मरने वाला मनुष्य कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में जन्म लेता है तथा तमोगुण के आधिक्य में मरने वाला मनुष्य कीट पशु आदि मूढ़ यौनियों में जन्म लेता है। इसी प्रकार महाभारत में आश्वमेधिक पर्व के अन्तर्गत अनुगीता पर्व में कहा गया है–

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणसंयुकता यावन्त्यधस्तामसा जनाः ।।[23]

अर्थात् सत्त्वगुण की अधिकता में मरने वाले मनुष्य स्वर्गादि उच्च लोकों में जाते हैं रजोगुण के आधिक्य में मरने वाले पुरुष मनुष्य लोक में तथा तमोगुण की प्रधानता में मरने वाले मनुष्य निम्न योनियों अर्थात् नरकों को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार माया के प्रभाव से जीवात्मा चौरासी लाख यौनियों के भंवरजाल में फँसता है और आटा पीसने वाली चक्की में पड़े अनाज की तरह पिसता रहता है। जगत्गुरूशंकराचार्य जी ने अज्ञान समष्टि के शुद्ध सत्त्वरूप को ही माया बताया है–

इयं समष्टिरुत्कृष्टा सत्त्वांशोत्कर्षतः पुरा।
मायेति कथ्यते तज्ज्ञैः शुद्धसत्त्वैकलक्षणा।।[24]

यह माया एक ऐसा विलक्षण तत्त्व है; जिसे न तो सत् कहा जा सकता है, न असत्, यदि यह सत् होती तो यह सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक होती और इसका कभी विनाश नहीं होता; जबकि ब्रह्मज्ञान होते ही इसका विनाश हो जाता है। अतः माया को इस स्थिति में सत् नहीं कहा जा सकता इसके विपरीत यदि माया को असत् मान लिया जाये तो वह समस्त जड़ पदार्थों के आभास आदि का कारण कैसे होगी ? अर्थात् जिस माया की स्वयं सत्ता नहीं है वह आकाश, पृथ्वी इत्यादि प्रपंचात्मक पदार्थों का कारण कैसे हो सकेगी ?

इसके अलावा माया की प्रत्यक्ष प्रतीति सभी को होती है। अतः किसी रूप में अस माया को असत् भी नहीं कहा जा सकताय अपितु यी सद् असत् दोनों से भिन्न भावरूप कोई अनिर्वचनीय तत्त्व है–अज्ञानं (मायां) तु सदसभ्याम् अनिर्वचनीययं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधिस्वरूपं यत्किंचिदिति वदन्त्यहमज्ञं इत्याद्यनुभवात् "देवात्म शक्तिं स्वगुणैनिगूढान इत्याश्रुतेष्च"[25]

योगसाधना करने वालों ने सत्त्वादि गुणत्रय से आच्छन्न और स्वयं प्रकाश आत्मा की शक्ति माया का अनुभ्वात्मक प्रत्यक्ष किया। उस अनादि शक्ति(माया) की सत्त का आभास उसके कार्यों से होता है; जैसा कि सांख्यकारिका में वर्णित है– "सौक्ष्माद् तदनुपलब्धिर्नाभवात कार्यस्तदुपलब्धिः"[26]

इस माया का प्रत्यक्ष दर्शन मारकण्डेय मुनि ने किया इसका विवरण श्रीमद्भागवत् महापुराणत् में द्वादशवें स्कन्ध के नवें अध्याय में उपलब्ध होता है–

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः।
उपासीनस्य सन्ध्याया ब्रह्मन् वायुरभून्महान्।।

एक दिन सन्ध्या के समय पुष्पभद्रा नदी के तट पर मारकण्डेय मुनि भगवान की उपासना में तन्मय हो रहे थे, उसी समय अचानक तीव्र वेग की आँधी चलने लगी।

तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं वलाहका अन्वभवन् करालाः।
अक्षस्थ विष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनन्तः उच्चैरभिवशर्धाराः।।

उस समय आँधी के कारण बड़ी भयंकर आवाज होने लगी और बड़े विकराल बादल आकाश में मंडराने लगे। बिजली चमक–चमककर कड़कने लगी और रथ के धुरे के समान जल की मोटी–मोटी धारायें गिरने लगीं। यही नहीं, मारकण्डेय मुनि को ऐसा दिखायी पड़ा कि चारों ओर से चारों समुद्र समूची पृथ्वी को

ततो व्यदृश्यन्त चतुः समुद्राः समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः।
समीरवेगोर्मिभिरूग्रनक्र महाभयावर्तगभीरघोषाः ।।

निगलते हुये आ रहे हैं। आँधी के वेग से समुद्र में बड़ी –बड़ी लहरें उठ रही हैं, बड़े–बड़े भयंकर भंवर पड़ रहे हैं और बड़ी भयंकर ध्वनि कानों को फाड़े डालती है। स्थान–स्थान पर बड़े–बड़े मगर उछल रहे हैं। उस समय बाहर–भीतर चारों ओर जल ही जल दिखायी दे रहा है, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उस जलराशि में

अन्तवहिश्चद्भिरतिद्युभिः खरेः षतह्रदाभीरूवतापितं जगत् ।
चतुःविधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिजलाप्लुतां क्ष्मां विमनाःसमत्रसत्।।

पृथ्वी ही नहींयअपितु स्वर्ग भी डूबा जा रहा है, ऊपर से बड़े वेग से आँधी चल रही है और बिजली चमक रही है, जिससे सम्पूर्ण जगत् संतप्त हो रहा है। जब मारकण्डेय मुनि ने देखा कि इस जल–प्रलय से सारी पृथ्वी डूब गयी है, उद्भिज्ज, स्वदेज अण्डज और जरायुज चारों प्रकार के प्राणी तथा स्वयं वे भी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उदास हो गये और अत्यन्त भयभीत भी। उनके सामने ही समुद्र में भयंकर लहरें उठ रहीं थीं, आँधी के वेग से जलराशि उछल रही थीं और प्रलयकालीन बादल बरस बरसकर समुद्र को और भी भरते जा रहे थे। उन्होंने देखा कि समुद्र ने द्वीप और पर्वतों के साथ सारी पृथ्वी को डुबो दिया है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, ज्योतिमण्डल (ग्रह, नक्षत्र, एवं तारों का समूह) और दिशाओं के साथ तीनों लोक जल में डूब गये। बस उस समय एकमात्र मारकण्डेय मुनि ही बच रहे थे। उस समय वे पागल और अंधे के समान जटा फैलाकर वहाँ से यहाँ भाग–भागकर अपने प्राण बचाने की चेष्टा कर रहे थे। किसी ओर बड़े से बड़े मगर तो किसी ओर बड़े–बड़े तिमिंगल मगरमच्छ उन पर टूट पड़ते थे। किसी ओर से हवा का झोंका आता तो किसी ओर से लहरों के थपेड़े उन्हें घायल कर देते। वे कभी बड़े भयंकर भंवर में पड़ जाते, कभी तरल तरंगों की चोट से विचलित हो उठते। कभी जल जन्तु आपस में एक दूसरे पर आक्रमण करते तब ये अचानक ही उनके शिकार बन

जाते। कभी भयभीत होते तो कभी मर जाते, तो कभी तरह तरह के रोग उन्हें सताने लगते।[27]

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च।
व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन् विष्णुमायावृतात्मनः।।[28]

इस प्रकार मारकण्डेय मुनि भगवान विष्णु की माया के चक्रव्यूह में फंसकर मोहित हो रहे थे। उस प्रलयकाल के सागर में उन्हें भटकते– भटकते सैकड़ों– हजारों ही नहीं लाखों–करोड़ों वर्ष बीत गये। एक बार उन्होंने एक टीले पर एक छोटा सा बरगद का पेड़ देखा उसमें हरे–हरे पत्ते और लाल–लाल फल शोभायमान हो रहे थे।

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम।
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः।।[29]

बरगद के पेड़ में ईशानकोण पर एक डाली थी, उसमें एक पत्तों का दोना सा बन गया था। उसी पर एक नन्हा सा शिशु लेट रहा था उसके शरीर से ऐसी उज्ज्वल छटा छिटक रही थी, जिससे आस पास का अँधेरा दूर हो रहा था।

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो ध्यन्तं वीक्ष्य विस्मितः ।।

नन्हें नन्हें हाथों में बड़ी सुन्दर –सुन्दर अंगुलियाँ थी वह शिशु अपने दोनों करकमलों से एक चरण कमल को मुख में डालकर चूम रहा था मारकण्डेय मुनि यह दिव्य दृष्य देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये

तद्दर्शनाद् वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनाम्बुजः।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम्।।

उस दिव्य शिशु को देखते ही मारकण्डेय मुनि की सारी थकावट दूर हो गयी शरीर पुलकित हो गया। उस नन्हें–से शिशु के इस अद्भुत भाव को देखकर उनके मन में तरह–तरह की चिन्तायें उठने लगीं कि यह शिशु कौन है? वे उस शिशु से ये बातें पूछने के लिये उनके समीप सरक गये।

तावच्छिशौर्वै वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत्।
तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्सनशो यथा पुरा मुह्यदतीव विस्मितः।।

अभी मारकण्डेय जी पहुँच भी न पाये थे कि उस शिशु के श्वास के साथ उसके शरीर के अन्दर उसी प्रकार चले गये जैसे कोई मच्छर किसी के पेट में चला जाये। उस शिशु के पेट में जाकर उन्होंने सब –की –सब वही सृष्टि देखी, जैसी प्रलय के पहले देखी थी। वे वह सब विचित्र दृष्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये और मोहवश कुछ सोच विचार भी न सके। उन्होंने उस शिशु के उदर में आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिमण्डल, पर्वत, समुद्र, द्वीप, वर्ष, दिशायें, देवता, दैत्य, वन, देश, नदियाँ, नगर, खानें, किसानों के गाँव, अहीरों की बस्तियाँ, आश्रम, वर्ण, उनके आचार–व्यवहार, पंचमहाभूत, भूतों से बने हुए प्राणियों के शरीर तथा पदार्थ, अनेक युग और कल्पों के भेद से युक्त काल आदि सब कुछ देखा। हिमालय पर्वत, वही पुष्पभद्रा नदी, उसके तट पर अपना आश्रम और वहाँ रहने वाले ऋषियों को भी मारकण्डेय जी ने प्रत्यक्ष ही देखा। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व को देखते ही देखते वे उस दिव्य शिशु के श्वास के द्वारा ही बाहर आ गये और फिर प्रलयकालीन समुद्र में गिर पड़े। इसके पश्चात् उन्होंने देखा कि समुद्र के बीच में पृथ्वी के टीले पर वहीं बरगद का पेड़।

तस्मिन पृथिव्याः ककुदि परूढं वतं च तत्पर्णपटे शयानम्।
तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितऽपांगनिरीक्षणेन ।।

ज्यों का त्यों विद्यमान है और उसके पत्ते के दोने में वही शिशु सोया हुआ है। उसके अधरों पर प्रेमामृत से परिपूर्ण मन्द–मन्द मुस्कान है और अपनी प्रेमपूर्ण चितवन से वह मारकण्डेय जी की ओर देख रहा है। मारकण्डेय जी उस शिशु का आलिंगन करने के लिए बड़े श्रम और कठिनाई से आगे बढ़े–

तावतस भगवान साक्षाद् योगाधीशो गुहाशयः।
अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ।।

भगवान केवल योगियों के ही नहीं, स्वयं योग के स्वामी और सबके हृदय में रहने वाले हैं। अभी मारकण्डेय जी उनके पास पहुँच भी नहीं पाये थे कि वे अन्तर्ध्यान हो गये।

तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसम्प्लवः।
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत् स्थितः।।[30]

उस शिशु के अन्तर्ध्यान होते ही वह बरगद का वृक्ष तथा प्रलयकालीन दृष्य एवं जल भी उसी क्षण लीन हो गया और मारकण्डेय मुनि ने देखा कि मैं तो पहले के समान ही अपने आश्रम पर बैठा हुआ हूँ।

स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम्।
वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ।।[31]

इस प्रकार मारकण्डेयमुनि ने भगवान नारायण की माया का प्रत्यक्ष दर्शन किया और इसके पश्चात् यह निश्चय करके कि मायापति भगवान ही इससे मुक्ति दिलाने के ही एकमात्र उपाय हैं, अतः वे उन्हीं की शरण में स्थित हो गये। भगवान श्रीकृष्ण ने भी इससे छूटने का उपाय केवल परमात्मा की ही शरण बताया है– 'तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत'[32]
इसी प्रकार श्वेताश्वत्तरोपनिषद् में भी कहा गया है –

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयष्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः।।[33]

विनाशशील प्रधान और अविनाशी जीवात्मा को भगवान शिव नियमित करते हैं। उसके चिन्तन से, उसमें मनोयोग करने से, प्रारब्ध की समाप्ति हो जाने पर विश्वरूप माया की निवृत्ति हो जाती है। शरीर रूप यंत्र (मैं और मेरे पन) मैं आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को परमात्मा अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार चौरासी लाख यौनियों में भ्रमण कराते हुए समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित है–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृददेशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया।।[34]

निष्कर्षः श्रीमद्भगवद्गीता में माया का स्वरूप के सन्दर्भ में दिये गये तथ्यों का अन्वेशण करने पर स्पष्ट होता है कि माया सत् और असत् के मध्य की कड़ी है अर्थात् अनिर्वचनीय रूपा है तथा यह ब्रह्म की आदि शक्ति है जिसकी सहायता से वह इस संसार का अनादिकाल से सृजन करता चला आ रहा है। यह (माया) जीव तथा ब्रह्म के मिलन में बाधक है। ब्रह्म का चिन्तन कर उसकी कृपा प्राप्त करके जीवात्मा माया के चुँगल से छूटकर आवागमन के चक्र से सदा-सदा के लिये मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद,6 / 47 / 18
2. प्रश्नोपनिषद्,1 / 16
3. श्रीमद्भगवद्गीता,7 / 14
4. श्रीशिवगीता,9 / 4
5. श्वेताश्वत्तरोपनिषद्,1 / 3
6. श्रीरामचरितमानस (बालकाण्ड),128 / 4
7. श्रीरामचरितमानस (बालकाण्ड),129–137
8. विवेकचूड़ामणि,4 / 110
9. विवेक चूडामणि,4 / 111
10. श्रीमद्भगवद्गीता,7 / 13
11. श्रीमद्भगवद्गीता,14 / 5
12. श्रीमद्भगवद्गीता,14 / 6
13. विवेकचूड़ामणि,4 / 119
14. श्रीमद्भगवद्गीता,14 / 7
15. विवेकचूड़ामणि,4 / 113–114
16. श्रीमद्भगवद्गीता,14 / 8
17. विवेकचूडामणि,4 / 118
18. विवेकचूडामणि,4 / 115–117
19. श्रीमद्भगवद्गीता,14 / 9
20. श्रीशिवगीता,9 / 5–6
21. साख्यकारिका,13
22. श्रीमद्भगवद्गीता,14 / 10–15
23. महाभारत(आश्वमेधिक पर्व / अनुगीता पर्व),39 / 10
24. सर्ववेदान्त सार संग्रह,309
25. वेदान्तसार,14
26. सांख्यकारिका,8
27. श्रीमद्भागवत् महापुराण,10 / 9 / 10–18
28. श्रीमद्भागवत् महापुराण,10 / 9 / 19
29. श्रीमद्भागवत् महापुराण,10 / 9 / 19
30. श्रीमद्भागवत् महापुराण,10 / 9 / 25–33
31. श्रीमद्भागवत् महापुराण,10 / 10 / 01
32. श्रीमद्भगवद्गीता,18 / 62
33. श्वेताश्वत्तरोपनिषद्,01 / 10
34. श्रीमद्भगवद्गीता,18 / 61